



समय और साहित्य की परिधि में मनुष्य

धीरेन्द्र प्रताप सिंह

शोध छात्र (डी0 फिल्ड, हिन्दी साहित्य), इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

मनुष्य एक चिंतनशील एवं सर्जनात्मक प्राणी है। इसी चिंतन एवं सर्जन के द्वारा मनुष्य अपने आने वाले कल को आज की अपेक्षा और बेहतर बनाने की कल्पना करता है और सफल भी होता है। मनुष्य होने का अर्थ आदिकाल से लेकर आज तक उसके अपने व्यक्तिक जीवन के सुख-दुख, लाभ-हानि, जीवन-मरण एवं स्वतंत्रता पर ही निर्भर नहीं करता अपितु साथ ही साथ सामाजिक दायित्वों, आदर्शों, नैतिक प्रतिमानों एवं मानवीय मूल्यों के प्रति सजग होने पर भी निर्भर करता है। यदि मनुष्य किंकरतव्यविमूढ़ है, सामाजिक सरोकारों से दूर और मानवता के लिए विध्वंसकारी है तो ऐसे लोगों को मनुष्यों के ही समाज में पशु की संज्ञा दी जाती है। ऐसे में यह सवाल उठता है कि मनुष्य के सामाजिक सरोकार और नैतिक मूल्य क्या हैं? ऐसे कौन से प्रतिमान हैं जो मनुष्य को मनुष्य होने के अर्थ में परिभाषित करते हैं। इस प्रश्न को थोड़ी देर के लिए यहीं छोड़ते हैं। पॉचवी शताब्दी ईसा पूर्व के यूनानी दार्शनिक-‘प्रोटागोरस’ की यह उक्ति प्रसिद्ध है कि ‘आदमी अपना पैमाना स्वयं है’।¹ प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में विशिष्ट है जिसके आलोक में वह अपने कार्यों के औचित्य को आँक सकता है। सदियों तक यह कथन उन लोगों के लिए प्रेरक रहा जो व्यक्ति के स्वायत्तता और स्वतंत्रता के पक्षधर थे। लेकिन ‘आदमी’ क्या है? इसके जबाब में सभी लोग ‘आदमी’ सम्बन्धी प्रचलित अवधारणाओं को बिना किसी आलोचनात्मक दृष्टि के स्वीकार करते रहे हैं, जबकि सबसे पहले सवाल तो यह पूछना जरूरी था कि यह आदमी जिसे सभी कामों की कसौटी माना जा रहा है, स्वयं है क्या? यानी यह कसौटी स्वयं निर्णित या निर्धारित है क्या? दुनिया में प्रचलित सभी पैमाने तो राजाज्ञा से निर्धारित होते रहे हैं। मानव व्यवहार में भी सत्ताधारियों ने भी अच्छाई-बुराई के मानक तय कर दिये जिनका पालन अनिवार्य बन गया। अगर ‘प्रोटागोरस’ के अर्थ में सभी व्यक्ति स्वयंमेव हर बात की कसौटी बन जाये और व्यक्ति क्या है? वह कैसा व्यवहार करेगा इससे अनजान रहे तो समाज में चारों ओर अनिश्चितता और अराजकता का माहौल पैदा हो जायेगा। कोई भी यह जान नहीं पायेगा कि उसका पड़ोसी अगले क्षण उससे कैसा व्यवहार करेगा? स्वयं उसके अपने निकटतम सगे सम्बन्धी नितांत अपरिचित और अनजान बन जायेंगे।

मनुष्य के वैज्ञानिक विकास क्रम में वह दिन क्रान्तिकारी था जब जानवरों के समूह में से बंदर नामक जानवर थोड़ी सी जोखिम उठाकर दो पैरों पर खड़ा हो गया। जब इस सृष्टि में मनुष्य का अस्तित्व प्रकाश में आया तो उसने अपने विवेक का समुचित प्रयोग किया। जहाँ विकास का अर्थ अन्य जीवों के लिए नगण्य था वहीं मनुष्य निरंतर विकासमान था। ‘यद्यपि मानव का विकास भी उन्हीं परिस्थितियों में हुआ, जिनके कारण दूसरे जीव विकसित हुए, परंतु इसका आगे का विकास जन्मजात परंपराओं से होता रहा है। यह

केवल जिंस (पदार्थ) के द्वारा ही अगली पीढ़ी तक नहीं पहुंचता, बल्कि शब्दों के माध्यम से भी चलता रहता है।²

सभ्यता के प्रारंभिक दौर से लेकर आज तक के ऐतिहासिक विकास क्रम में मनुष्य ने कई क्रान्तिकारी एवं साहसिक कदम उठाये। जैसे- आग की खोज, अन्न की उपज, तन ढकने की व्यवस्था, पहिए का आविष्कार आदि-आदि। जैसे-जैसे मानव समुदाय पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ता गया उसके मस्तिष्क ने बढ़ती आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर नित नये आविष्कारों एवं भौतिक उपादानों को जन्म दिया। परन्तु जब यह विचार करते हैं कि क्या मनुष्य होने का कर्तव्य सिर्फ भौतिक उन्नति ही है या मानव होने के और भी कई अर्थ हैं? तो कई सारे प्रश्न वर्तमान समय के सन्दर्भ में आ खड़े होते हैं। जिसे हम सामाजिक एवं नैतिक उत्तरदायित्वों के सन्दर्भ में समझ सकते हैं। लेकिन ऐसा क्या है जो मनुष्य को मनुष्य होने के अर्थ में ज्यादा सटीक एवं सार्थक रूप से परिभाषित करता है?

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य और समाज का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ है। यदि उसे मानव समाज में रहना है तो उसके और समाज के बीच के सम्बन्ध का स्पष्ट निर्धारण होना चाहिए। उसका एक दूसरे के प्रति किस तरह का और कैसा व्यवहार हो यह भी परिभाषित यदि होगा तो समाज के दूसरी इकाइयों के भी बीच एक सौहार्दपूर्ण सामंजस्य सदैव स्थापित रहेगा। यह किस तरह और कैसा का प्रश्नगत संबंध नैतिक मूल्यों में भी निहित है। ‘मनुष्य नैतिक इसलिए नहीं होता है कि वह सामाजिक या समाज में रहने को विवश है और समाज की व्यवस्था को मानने के लिए विवश है बल्कि इसलिए कि नैतिक होने में ही उसका मनुष्य होना या मानवत्व की सिद्धि संभव है- दूसरे शब्दों में नैतिक हुए बिना सही अर्थों में उसका मनुष्य होना ही संभव नहीं है।³

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में जहाँ निंदा, ईर्ष्या, छल, प्रपंच, झूठ, चोरी, आडम्बर आदि प्रमुखता से मानव समाज पर हावी हो रहे हैं ऐसे में यह कहा जाना उचित ही है कि धार्मिक हुए बिना भी नैतिक होना तो सम्भव है किंतु नैतिक हुए बिना धार्मिक क्या मनुष्य होना ही संभव नहीं है। मनुष्य सिर्फ इसलिए ही नैतिक नहीं है कि नैतिकता कोई सामाजिक मजबूरी है अपितु इसलिए नैतिक है कि नैतिकता उसके अस्तित्व का बुनियादी धर्म है। मनुष्य की चिंतन शक्ति और सर्जनात्मक कला सिर्फ इसलिए नहीं है कि वह अन्य जीवों से कितना अलग और कितनी दूर तक सोचता है, अपितु इसलिए की यह मानव समाज के साथ अन्य सबके लिए कितना उपयोगी है। एक सर्जनात्मक रिश्ता मानवीय आचरण की नैतिक कसौटी है। मनुष्य होने के अर्थ में यह बातें ज्यादा उपयोगी और प्रभावशाली हैं। क्योंकि मनुष्य बने रहने के लिए यह आवश्यक है कि उसका आचरण उत्तरदायी हो, विभिन्न स्तर पर अमानवीयता का विरोधी हो, संघर्षपूर्ण एवं सजग चेतना से अनुप्राणित हो।

यहाँ धर्म का अर्थ यदि विभिन्न सम्प्रदायों से न समझकर मानव धर्म

से समझा जाये तो मानव उन्नति स्वयंमेव होगी। 'संसार के श्रेष्ठ मनीषियों ने घोषणा की है कि मनुष्य एक है और इसलिए मूल मानव धर्म भी एक ही है। यह इस युग की आवश्यकता नहीं है, किंतु युग का अनुभूत सत्य है।'⁴

मानव ने शारीरिक पशुता से मुक्ति पाई पर मानसिक और मनोवैज्ञानिक पशुता तो आज भी बरकरार है जो अक्सर किसी को दी जाने वाली गालियों— 'जंगली जानवर' आदि में अब तक जारी है।⁵ ढेर सारे आविष्कार तो मानव हित के लिए हुए लेकिन अहंकार और व्यक्ति केन्द्रित सुपर मैन की कल्पना ने क्या मानव समुदाय के ही उपर संकट खड़ा नहीं किया है? क्या इस मानव जनित व्यवस्था ने मनुष्य के ही बहुआयामी विकास की संभावनाओं को मानसिक, आध्यात्मिक अथवा आर्थिक रूप से बाधित नहीं किया है? क्या आज सुपर मैन की कल्पना, बाजारवाद और पूंजीवाद ने क्या उसी प्रकृति पर वार करने का काम नहीं किया है जिसमें हम सब बैठे हुए हैं। विभिन्न तरह के प्रदूषणों ने क्या मानव जीवन को दूबर कष्ट प्रद नहीं बनाया है। यदि प्रकृति का अधाधुन दोहन है, जल, जंगल, जमीन पर संकट खड़ा है। क्या यह धरती के ही अस्तित्व को खत्म नहीं कर देगा। यदि ऐसा है— तो उस मनुष्य बनने का क्या अर्थ जो सुपर मैन की ओर कदम बढ़ाकर मानव अस्तित्व को ही खत्म करने पर तुला है। लाल बहादुर वर्मा जी लिखते हैं कि 'आज सारी दुनिया में उत्पादन, वितरण और उपभोग को बढ़ाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है।... जब से पूंजीवाद ने पैर फैलाया है तभी से मानव व प्रकृति के बीच द्वंद पैदा हुआ और प्रकृति के शोषण दोहन का क्रम शुरू हुआ।'⁶

आज कुछ मानव समुदाय जाति, धर्म, क्षेत्र एवं तमाम संकीर्णताओं के आधार पर दूसरे मानव समुदाय के खिलाफ युद्ध और हिंसा की रणनीति अपनाकर सरे—आम मानवता का सर कलम कर रहे हैं। दो विश्व युद्धों के अपार जन धन की हानि और कत्ले— आम के बाद भी जब विश्व के मानचित्र पर पुनः तृतीय विश्व युद्ध की हलचल मचने लगी है तो ऐसे में मानव होने का अर्थ तो एक हिंसक पशु से ज्यादा कुछ नहीं दिखता।

इस विषय के संदर्भ में यह भी ध्यातव्य है कि मनुष्य की शक्ति अपने चिंतन एवं कल्पना के द्वारा असीमित और अपरिमित है। मनुष्य ही वह जीव है जो स्वयं से सवाल कर सकता है। 'मनुष्य और अन्य प्राणियों में एक बुनियादी फर्क यह है अन्य प्राणी जहाँ अपनी परिस्थिति को बदल सकने की बजाय अपने को उसके अनुकूल कर लेते हैं और ऐसा न कर पाने पर नष्ट हो जाते हैं, वहीं मनुष्य में यह सामर्थ्य होता है कि वह किसी की परिस्थिति को अपने अनुकूल परिवर्तित और नियंत्रित कर सकता है।'⁷ इसलिए आज मानव समाज को जरूरत है जीवन के सभी पक्षों के उचित अनुचित का मूल्यांकन करने की।

आज का मानव समाज विश्व ग्राम में प्रवेश कर देशकाल की सीमाओं को तोड़ते हुए अपनी क्षमता, अपने सामर्थ्य का उपयोग करते हुए असीम और शाश्वत को पाने की आकांक्षा रखने लगा है। अनवरत कर्म में लीन रहकर अपने निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त कर रहा है। तो ऐसे में मानव होने के अर्थ और महत्व की प्रासंगिकता और बढ़ जाती है। चूंकि यह आलेख 21वीं सदी में लिखा जा रहा है। जिसमें ज्ञान का विस्फोट हो रहा है। सूचना संचार के क्रांति ने आम जन जीवन को सहज बनाया है। ऐसे में मानव होने के अर्थ का रूप और परिभाषा वह नहीं रह जायेगी जो आदिकाल में हुआ करती थी।

मनुष्य के अस्तित्व के निरंतर प्रवाह में ही लाभ—हानि, जीवन—मरण, यश—अपयश, सुख—दुख सब कुछ विद्यमान है। कुछ लोग एक

सीमा के दायरे में ही स्व कल्याण, स्व विकास, स्व चिंतन में ही लीन रह कर अपने और परिवार तक ही अपनी इहलौकिक लीला समाप्त कर देते हैं। तो कुछ लोग असीम व शाश्वत पाने की आकांक्षा रखते हुए अपनी संभावनाओं को तलाश करते हैं और अपने मानव होने के अर्थ को खोज लेते हैं। तभी तो 'महात्मा बुद्ध' आज पूजनीय हैं जिन्होंने असीम एवं शाश्वत की चाह में परिवार और विलासिता के जीवन से दूर हटकर दुनिया के दुख को अपना दुख समझ कर उसका समाधान ढूँढ़ निकला। महान सम्राट अशोक ने ही तो कलिंग युद्ध के भीषण रक्तपात और हिंसा से मुक्त होकर अहिंसा का रास्ता अपना कर अपने मानव होने का अर्थ ढूँढ़ लिया और महान सम्राट की संज्ञा पाई। इसी कड़ी में तो महावीर, विवेकानंद, महात्मा गांधी, भगत सिंह, राजा राम मोहन राय, जैसे अनेक लोगो का नाम है जिन्होंने मानव समाज की सच्ची सेवा, निष्ठा और पवित्रता से की तथा अपने को महा मानव होने का आदर्श समाज के सामने रख सकें।

आज हम चाहे जितने आधुनिक एवं विकसित होने का दावा करें यदि हमारे मन मस्तिष्क में मनुष्य होने के अस्तित्व के जो कुछ तत्व होते हैं, यदि नहीं हैं तो हम मानव समाज में रहने के योग्य नहीं हो सकते यथा— समानता, भातृत्व, सेवा, सच्चाई, संवेदनशीलता, संस्कार, कर्तव्य निष्ठा, मर्यादा, सकारात्मक दृष्टिकोण एवं नैतिकता आदि ऐसे समस्त मानवीय मूल्य। ये ऐसी मूल बातें हैं जो हमें मानव होने का अर्थ प्रदान करते हैं।

मनुष्य आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक विविध आयामों से गुजरा है। जिसमें समय और समाज के विभिन्न पहलुओं का योगदान रहा है। नंदकिशोर आचार्य जी लिखते हैं कि 'जो व्यवस्था मनुष्य के विकास की संभावनाओं को मानसिक, आध्यात्मिक अथवा सामाजिक, आर्थिक किसी भी स्तर पर रोकती है, तो उसे हम उचित नहीं कह सकते।'⁸ साहित्य के संदर्भ में हजारी प्रसाद द्विवेदी का एक भाषण 'मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है' महत्वपूर्ण है। कराची में हिंदी साहित्य सम्मेलन की साहित्यिक परिषद के सभापति पद से दिये गये भाषण का एक अंश इस प्रकार है— 'मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ जो वागलाज मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षिता से बचा न सके जो उसकी आत्मा को तेजोदीप्त न कर सके, जो उसके हृदय को परदुःखकातर और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच है।'⁹

मानव होने का अर्थ यह भी है कि हम प्रकृति के प्रति, इंसान के प्रति, समाज के प्रति, कितने सजग और जागरूक हैं। यदि हम ऐसा कर पाते हैं तो बाजारवाद—पूंजीवाद के षडयंत्र से मानव समुदाय को मुक्त करा सकते हैं। अधिकारों के साथ कर्तव्यों को ध्यान में रखकर यदि हम कर्म पथ पर लीन रहते हैं तो ही हमारा जीवन सार्थक एवं सफल होता है। यही मनुष्य होने का अर्थ है और सच्ची परिभाषा भी। 'यदि मानव जाति, जिसे आज संहारक शस्त्रास्त्रों ने भयंकर चुनौती दे दी है, सही दिशा में काम करने से चूकती है, तो उसके सामने सर्वनाश का ही, एकमात्र विकल्प रह जाएगा।'¹⁰

ऐसे में यदि मानव जाति नैतिक मूल्यों एवं सामाजिक सरोकारों के साथ जीवन संग्राम में आगे बढ़ती है तो निश्चित रूप से मानव कल्याण एवं सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय की भावना पल्लवित, पुष्पित होगी। साथ ही यह भी कि पीढ़ियाँ बदलने से मानवता के मूल्य नहीं बदले जा सकते क्योंकि पीढ़ियाँ चाहे जितनी बदल जायी इंसान की प्रजाति नहीं बदलती। यह भी कि इन्हीं अर्थों को ग्रहण कर हम मनुष्य कहलाने के अधिकारी हो सकेंगे अथवा शायद नहीं।

संदर्भ

1. सिन्हा, सच्चिदानंद, संस्कृति और समाजवाद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली सं०-2004 (प्रथम), पृ०सं०- 11
2. शर्मा, दामोदर एवं व्यास, हरिश्चंद्र, आधुनिक जीवन और पर्यावरण, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, सं०-2016, पृ०सं०-240-241
3. आचार्य, नंद किशोर, संस्कृति का व्याकरण, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, सं० 1997, पृ०सं०- 20
4. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, कुटज, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं०-2014, पृ०सं०- 79
5. वर्मा, लाल बहादुर, मुक्ति का मतलब, मानव मुक्ति, सांस्कृतिक मुहिम प्रकाशन, तेलियरगंज, इलाहाबाद, सं०-2011, पृ०सं०- 6
6. वही, पृ०सं०- 56
7. आचार्य, नंद किशोर, संस्कृति का व्याकरण, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, सं० 1997, पृ०सं०- 29
8. वही, पृ०सं०- 13
9. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है, अभिनव निबंध संग्रह, हिन्दी परिषद, प्रकाशन, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, सं०-2012, पृ०सं०- 137
10. व्यास, हरि प्रसाद, भूमिका, ग्राम स्वराज (महात्मा गांधी), नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, सं०-2015 (सातवां पुनर्मुद्रण), पृ०सं०- ix